परिवर्तनकालस्यानन्तस्यापि क्षयदर्शनादनैकान्तिक आनन्त्यहेतुरिति चेन्न, उभयोर्भिन्ननिबन्धनत: प्राप्तानन्तयो: साम्याभावतोऽर्ध्दपुद्गलपरिवर्तनस्य वास्तवानन्त्याभावात्। तद्यथा- अर्ध्दपुद्गलपरिवर्तनकाल: सक्षयोऽप्यनन्त:, छद्मस्थैरनुपलब्धपर्यन्तत्वात्। केवलमनन्तस्तव्दिषयत्वाव्दा। जीवराशिस्तु पुन: संख्येयराशिक्षये १ (मु. क्षयोऽपि ।) ऽपि निर्मूलप्रलयाभावादनन्त इति। अथवा छद्मस्थानुपलब्ध्यपेक्षामन्तरेणानन्त्यादिति विशेषणाव्दा नानैकान्तिक इति। किं च सव्ययस्य निरवशेषयेऽभ्युपगम्यमाने कालस्यापि निरवशेषक्षयो जायेत, सव्ययत्वं प्रत्यविशेषात्। अस्तु चेन्न, सकलपर्यायप्रक्षयतोऽशेषस्य वस्तुन: प्रक्षीणस्वलक्षणस्याभावापत्ते:। मुक्तिमनुपगच्छतां कथं पुनर्भव्यत्वमिति चेन्न, मुक्तिगमनयोग्यतापेक्षया तेषां भव्यव्यपदेशात् । न च योग्या: ---

----

इसलिये भव्य राशिकेक्षय न होनेमें जो अनन्तरुप हेतु दिया है वह व्यभिचरित हो जाता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, भिन्न भिन्न कारणोंसे अनन्तपनेको प्राप्त भव्यराशि और अर्धपुद्गल-परिवर्तनरुप काल इन दोनों राशियोंमें समानताका अभाव है, और इसलिये अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल वास्तवमें अनन्तरुप नहीं है ।आगे इसीका स्पष्टीकरण करते हैं ---

अर्धपुद्गल-परिवर्तनकाल क्षयसहित होते हुए भी अनन्त है, क्योंकि, छद्मस्थ जीवोंके व्दारा उसका अन्त नहीं पाया जाता है। अथवा केवलज्ञान अनन्त है और उसका विषय होनेसे वह अनन्त है। जीवराशि तो संख्यातवें भागरुप राशिकेक्षय हो जाने पर भी निर्मूल नाश नहीं होनेसे, अनन्त है। अथवा, पहले जो भव्य राशिके क्षय नहीं होनेमें अनन्तरुप हेतु दे आये हैं उसमें 'छद्मस्थ जीवोंके व्दारा अनन्तकी उपलब्धि नहीं होती है, इस अपेक्षाके विना ही' Sयह विशेषण लगा देनेसे अनैकान्तिक दोष नहीं आता है। दूसरे व्ययसहित अनन्तके सर्वथा क्षय मान लेनेपर कालका भी सर्वथा क्षय हो जायगा, क्योंकि, व्ययसहित होनेकेप्रति दोनों समान हैं।

शंका -- यदि ऐसा ही मान लिया जाय तो क्या हानि है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर कालकी समस्त पर्यायोंकेक्षय हो जानेसे संपूर्ण द्रव्योंकी स्वलक्षणरुप पर्यायोंका भी अभाव हो जायगा और इसलिये समस्त वस्तुओंकेअभावकी आपत्ति आ जायगी।

शंका -- मुक्तिको नहीं जानेवाले जीवोंकेभव्यपना कैसे बन सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, मुक्ति जानेकी योग्यताकी अपेक्षा उनके भव्य संज्ञा बन जाती है। जितने भी जीव मुक्ति जानेके योग्य होते हैं वे सब नियमसे कलंकरहित होते हैं --

----

सर्वेऽपि नियमेन निष्कलङ्का भवन्ति, सुवर्णपाषाणेन व्यभिचारात्। उक्तं च--

एय-णिगोद-सरीरे जीवा दव्व-प्पमाणदो दिट्ठा।

सिध्देहि अणंत-गुणा सव्वेण वितीद-कालेण १

(प्रा. पं. १,८४। गो. जी. १९६.) ।।२१०।।

तव्दिपरीता: अभव्या:। उक्तं च--

भविया सिध्दी जेसिं जीवाणं ते भवंति भव-सिध्दा।

तव्विवरीदाभव्वा संसारादो ण सिज्झंति२ (प्रा. पं. १,१५६ । गो. जी. ५५७ (भवसिध्द) अनेन सिध्देर्लब्धियोग्यताभ्यां भव्यानां व्दैविध्यमुक्तं। जी. प्र. टी.) ।।२११।।

भव्यगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह--

भवसिध्दिया एइंदिय-प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति३ (भव्यानुवादेन भव्येषु चतुर्दशापि सन्ति। स. सि. १.८.) ।।१४२।।

सुगममेतत्।

अभव्यानां गुणस्थाननिरुपणायाह --

अभवसिध्दिया एइंदिय-प्पहुडि जाव सण्णि-मिच्छाइट्ठि ति ४ (अभव्य आद्य एव स्थाने। स. सि. १.८.)

ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि, सर्वथा ऐसा मान लेने पर स्वर्णपाषाणसे व्यभिचार आ जायगा। कहा भी है--

द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा सिध्दराशिसे और संपूर्ण अतीत कालसे अनन्तगुणें जीव एक निगोदशरीरमें देखे गये हैं ।।२१०।।

भव्योंसे विपरीत अर्थात् मुक्तिगमनकी योग्यता न रखनेवाले अभव्य जीव होते हैं। कहा भी है --

जिन जिवोंकी अनन्तचतुष्टयरुप सिध्दि होनेवाली हो अथवा जो उसकी प्राप्तिके योग्य हो उन्हें भव्यसिध्द कहते हैं। और इनसे विपरीत अभव्य होते हैं। ये संसारसे निकलकर कभी भी मुक्तिको प्राप्त नहीं होते हैं ।।२११।।

अब भव्यजीवोंके गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं --

भव्यसिध्द जीव एकेन्द्रियसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ।।१४२।।

इस सूत्रका अर्थ सुगम है--

अब अभव्यजीवोंके गुणस्थानका निरुपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं --

अभव्यसिध्द जीव एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानतक होते हैं ।।१४३।।

एतदपि सुगमम्।

सम्मत्ताणुवादेण अत्थि सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी मिच्छाइट्ठी चेदि ।।१४४।।

आम्रवनान्तःस्थनिम्बानामाम्रवनव्यपदेशवन्मिथ्यात्वादीनां सम्यक्त्वव्यपदेशो न्याय्यः। सुगममन्यत्। उक्तं च --

छप्पंच-णव-विहाणं अत्थाणं जिनवरोवइट्ठाणं।

आणाए अहिगमेण व सद्दहणं होइ सम्मतं १ (प्रा. पं. १,१५९। गाथेयं पूर्वमपि ९६ गाथाङ्केन

आगता। तहियाणं तु भावाणं सब्भावे उवएसणं। भावेणं सद्दहंतस्स सम्मत्तं तं वियाहियं।।

उत्त. २८.१५.) ||२१२||

खीणे दंसण-मोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई।

तं खाइय-सम्मत्तं णिच्चं कम्म-क्खवण-हेऊ २ (प्रा. पं. १,१६०। गो. जी. ६४६.) ।।२१३।। वयणेहि वि हेऊहि वि इंदिय-भय-आणएहि रुवेहि।

वीहच्छ-दुगुंछाहि ण सो ते-लोक्केण चालेज्ज ३ (प्रा. पं्. १,१६१ । गो. जी. ६४७.) ||२१४||

इस सूत्रका अर्थ भी सुगम है।

अब सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे जीवोंके अस्तित्वके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं --

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं ।।१४४।।

जिस प्रकार आम्रवनके भीतर रहनेवाले नीमके वृक्षोंको आम्रवन यह संज्ञा प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व आदिको सम्यक्त्व यह संज्ञा देना उचित ही है। शेष कथन सुगम है। कहा भी है --

जिनेन्द्रदेवके व्दारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय और नव पदार्थोंका आज्ञा अथवा अधिगमसे श्रध्दान करनेको सम्यक्त्व कहते हैं ।।२१२।।

दर्शनमोहनीय कर्मके सर्वथा क्षय हो जाने पर जो निर्मल श्रध्दान होता है वह क्षायिक सम्यक्त्व है। जो नित्य है कर्मोंके क्षपणका कारण है ।।२१३।।

श्रध्दानको भ्रष्ट करनेवाले वचन या हेतुओंसे अथवा इन्द्रियोंको भय उत्पन्न करनेवाले

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।

चल-मलिनमगाढं तं वेदग-सम्मत्तमिह मुणसु १ (प्रा. पं. १,१६६. पाठभेद:। गो.जी. ६४९. नानात्मीयविशेषेषु चलतीति चलं स्मृतं। लसत्कल्लोलमालासु जलमेकमवस्थितं।। स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ देवोऽयं मेऽन्यकारिते। अन्यस्यायमिति भ्राम्यन् मोहाच्छ्ध्दोऽपि चेष्टते।। तदप्यलब्धमाहात्मं यकात् सम्यक्त्वकर्मण:। मलिनं मलसंगेन शुध्दं स्वर्णमिवोद्भवेत्।। स्थान एव स्थितं कंप्रमगाढमिति कीर्त्यते। वृध्दयष्टिरिवात्यक्तस्थाना करतले स्थिता।। समेऽप्यनन्तशक्तित्वे सर्वेषामर्हतामयं। देवोऽस्मै प्रभुरेषोऽस्मा इत्यास्था सुदृशामिपि।। गो. जी. २५ जी. प्र. टी. उद्धृता.) ।।२१५।।

दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थ-सद्दहणं ।

उवसम-सम्मत्तमिणं पसण्ण-मल-पंक-तोय-समं २ (गो. जी. ६५०.) ।।२१६।।

सम्यग्दर्शनस्य सामान्यस्य क्षायिकसम्यग्दर्शनस्य च गुणनिरुपणार्थमाह --

सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि-प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ३ (सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अयोगकेवल्यन्तानि सन्ति। स. त्ति. १.८.) ||१४५||

किं तत्सम्यक्त्वगतसामान्यमिति चेत्, त्रिष्वपि सम्यग्दर्शनेषु य: साधारणोंऽशस्तत्सामान्यम्। क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकेषु परस्परतो भिन्नेषु किं सादृश्यमिति --

----

आकारोंसे या बीभत्स अर्थात् निन्दित पदार्थोंके देखनेसे उत्पन्न हुई ग्लानिसे, किंबहुना तीन लोकसे भी वह क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है ।।२१४।।

सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृतिके उदयसे पदार्थोंका जो चल, मलिन और अगाढरुप श्रध्दान होता है उसको वेदक सम्यग्दर्शन कहते हैं ऐसा हे शिष्य तू समझ ।।२१५।।

दर्शनमोहनीयके उपशमसे कीचडके नीचे बैठे जानेसे निर्मल जलके समान पदार्थोंका, जो निर्मल श्रध्दान होता है वह उपशमसम्यग्दर्शन है ।।२१६।।

अब सामान्य सम्यग्दर्शन और क्षायिकसम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंके निरुपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

सामान्यसे सम्यग्दृष्टि और विशेषकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर आयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ।।१४५।।

शंका -- सम्यक्त्वमें रहनेवाला वह सामान्य क्या वस्तु है?

समाधान -- तीनों ही सम्यग्दर्शनोंमें जो साधारण धर्म है वह सामान्य शब्दसे यहां पर विवक्षित है।

शंका -- क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक सम्यग्दर्शनोंके परस्पर भिन्न भिन्न

चेन्न, तत्र यथार्थश्रध्दानं प्रति साम्योपलम्भात् । क्षयक्षयोपशमोपशमविशिष्टानां यथार्थश्रध्दानानां कथं समानतेति चेद्भवतु विशेषणानां भेदो न विशेष्यस्य यथार्थश्रध्दानस्य। सुगममन्यत्।

वेदकसम्यग्दर्शनगुणसंख्याप्रतिपादनार्थमाह --

वेदगसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि-प्पहुडि जाव अप्पमत्त- संजदा त्ति [१] (क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अप्रमत्तान्तानि । स. सि. १.८.) ।।१४६।।

उपरितनगुणेषु किमिति वेदकसम्यक्त्वं नास्तीति चेन्न, अगाढसमलश्रध्दानेन सह क्षपकोपशमकश्रेण्यारोहणानुपपत्तेः। वेदकसम्यक्त्वादौपशमिकसम्यक्त्वस्य कथमाधिक्यतेति चेन्न, दर्शनमोहोदयजनितशैथिल्यादेस्तत्रासत्त्वतस्तदाधिक्योपलम्भात् ।

होने पर सदृशता क्या वस्तु हो सकती है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, उन तीनों सम्यग्दर्शनोंमें यथार्थ श्रध्दानके प्रति समानता पाई जाती है।

शंका -- क्षय, क्षयोपशम और उपशम विशेषणसे युक्त यथार्थ श्रध्दानोंमें समानता कैसे हो सकती है?

समाधान -- विशेषणोंमें भेद भले ही रहा आवे, परंतु इससे यथार्थ श्रध्दारुप विशेष्यमें भेद नहीं पडता है।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम है।

अब वेदकसम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंकी संख्याके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं --

वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानतक होते हैं।।१४६।।

शंका -- ऊपरके आठवें आदि गुणस्थानोंमें वेदकसम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता है?

समाधान -- नहीं होता, क्योंकि, अगाढ आदि मलसहित श्रध्दानके साथ क्षपक और उपशम श्रेणीका चढना नहीं बनता है।

शंका -- वेदकसम्यग्दर्शनसे औपशमिक सम्यग्दर्शनकी अधिकता अर्थात् विशेषता कैसे संभव है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके उदयसे उत्पन्न हुई शिथिलता आदि औपशमिक सम्यग्दर्शनमें नहीं पाई जाती है, इसलिये वेदकसम्यग्दर्शनसे औपशमिकसम्यग्दर्शनमें विशेषता सिध्द हो जाती है।

कथमस्य वेदकसम्यग्दर्शनव्यपदेश इति चेदुच्यते। दर्शनमोहवेदको वेदकः, तस्य सम्यग्दर्शनं वेदकसम्यग्दर्शनम् । कथं दर्शनमोहोदयवतां सम्यग्दर्शनस्य सम्भव इति चेन्न, दर्शनमोहनीयस्य

देशघातिन उदये सत्यपि जीवस्वभावश्रध्दानस्येकदेशोत्पत्त्य-१ (मु. देशे सत्य।) विरोधात्। देशघातिनो दर्शनमोहनीयस्य कथं सम्यग्दर्शनव्यपदेश इति चेन्न, सम्यग्दर्शनसाहचर्यात्तस्य तव्द्यपदेशाविरोधात् ।

औपशमिकसम्यग्दर्शनगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह --

उवसमसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि-प्पहुडि जाव उवसंत-कसाय-वीयराय-छदुमत्था त्ति[२] (औपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि उपशान्तकषायान्तानि । स. सि. १.८.) ।।१४७।।

सुगममेतत्।

सासणसम्माइट्ठी एकम्मि चेय सासणसम्माइट्ठि- ट्ठाणे ।।१४८।।

शंका -- क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनको वेदक सम्यग्दर्शन यह संज्ञा कैसे प्राप्त होती है?

समाधान -- दर्शनमोहनीय कर्मके उदयका वेदन करनेवाले जीवको वेदक कहते हैं। उसके जो सम्यग्दर्शन होता है उसे वेदकसम्यग्दर्शन कहते हैं।

शंका -- जिनके दर्शनमोहनीय कर्मका उदय विद्यमान है उनके सम्यग्दर्शन कैसे पाया जा सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयकी देशघाति प्रकृतिके उदय रहने पर भी जीवके स्वभावरुप श्रध्दानके एकदेश की उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका -- दर्शनमोहनीयकी देशघाति प्रकृतिको सम्यग्दर्शन यह संज्ञा कैसे दी गई?

समाधान -- नहीं क्योंकि, सम्यग्दर्शनके साथ सहचर संबन्ध होनेके कारण उसको सम्यग्दर्शन इस संज्ञाके देनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

अब औपशमिक सम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं ---

उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्त-कषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थानतक होते हैं ।।१४७।।

इस सूत्रका अर्थ सुगम है।

अब सासादनसम्यक्त्व आदि संबन्धी गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये तीन सूत्र कहते हैं --

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एक सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं ।।१४८।।

सम्मामिच्छाइट्ठी एक्कम्मि चेय सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे ।।१४९।।

मिच्छाइट्ठि एइंदिय-प्पहुडि जाव सण्णि-मिच्छाइट्ठि१ (सासादनसम्यग्दृष्टि: सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्मिथ्यादृष्टिश्च स्वे स्वे स्थाने । स. सि. १.८) त्ति ।।१५०।।

सुगमत्वात्त्रिष्ववप्येतेषु सूत्रेषु न वक्तव्यमस्ति। वुत्तं २ (अ. प्रतौ 'वृत्तंच' इत्यत आरम्य गाथाचतुष्कमिदं नास्ति । मु. प्रतावपि नास्ति।) च --

ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो दु परिवदिदो।
सो सासणो त्ति णेयो सादिय मध पारिणामिओ भावो ।।२१७।।
सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु।
विरदाविरदेण समो सम्मामिच्छो त्ति णादव्वो ।।२१८।।
ण वि जायइ ण वि मरइ ण वि सुध्दो ण वि य कम्म-उम्मुको ।
चउगइमज्झत्थे वुण रागाइ-समण्णियो जीवो ।।२१९।।
तिण्णि जणा एक्केक्कं दोद्दो णेच्छंति ते तिवग्गा य ।
एक्को तिण्णि ण इच्छइ सत्त वि पावंति मिच्छत्तं ।।२२०।।

सम्यग्दर्शनादेशप्रतिपादनार्थमाह --

णेरइया अत्थि मिच्छाइट्ठी सासण-सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ।।१५१।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं ।।१४९।।

मिथ्यादृष्टि जीव एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी मिथ्यादृष्टितक होते हैं।।१५०।।

इन तीनों सूत्रोंका अर्थ सुगम है, अतएव इनके विषयमें अधिक कुछ भी नहीं कहना है। कहा भी है --

जो सम्यक्त्वसे गिरकर मिथ्यात्वको नही प्राप्त हुआ है, उसे सासादन सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए। यह गुणस्थान सादि और पारिणामिक भाववाला है ।।२१७।।

जिस जीवके जीवादिक तत्त्वोंमे श्रध्दान और अश्रध्दान रुप भाव है, उसे विरताविरतके समान सम्यग्मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए ।।२१८।।

वह न जन्म लेता है, न मरता है, न शुध्द होता है और न कर्मसे उन्मुक्त होता है। किन्तु वह रागादिसे युक्त होकर चारों गतियोंमे पाया जाता है ।।२१९।।

ऐसे तीन जन जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनोंमेसे किसी एक एक को (मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करते, दूसरे ऐसे तीन जन जो इन तीनोंमेंसे दो दो को (मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करते तथा कोई ऐसा भी जीव हो जो तीनोंको (मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करता ये सातों जीव मिथ्यात्वी है ।।२२०।।

अब सम्यग्दर्शनका मार्गणाओंमें निरुपण करनेकेलिये सूत्र कहते हैं--

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत

अथ स्याद्गतिनिरुपणायामस्यां गतौ इयन्ति गुणस्थानानि सन्ति, इयन्ति न सन्तीति निरुपितत्वान्न वक्तव्यमिदं सूत्रम्, सम्यक्त्वनिरुपणाया गुणस्थाननिरुपणाव-सराभावाच्चेति न, विस्मृतपूर्वोक्तार्थस्य प्रतिपाद्यस्य तमर्थ संस्मार्य तत्र तत्र गतौ सम्यग्दर्शनभेदप्रतिपादनप्रवणत्वात्। सुगममन्यत्।

एवं जाव सत्तसु पुढवीसु ।।१५२।।

कथं सामान्यवव्दिशेष: स्यादिति चेन्न, विशेषव्यतिरिक्तसामान्यस्यासत्त्वात्। नाव्यतिरेकोऽपि व्दयोरभावासञ्जनात् १ (मु. भावासञ्जननात्।) नोभयपक्षोऽपि पक्षव्दयोक्तदोषासञ्जनात् २ (मु. दोषासंजननात्)। नि:स्वभावप्रसङ्गात्। न च सामान्यविशेषयोरभाव एव प्राप्तजात्यन्तरत्वेनोपलम्भात्। तत: सूक्तमेतदिति स्थितम् ।

सम्यग्दृष्टि होते हैं ।।१५१।।

शका -- गतिमार्गणाकार निरुपण करते समय 'इस गतिमें इतने गुणस्थान होते हैं और इतने नहीं होते हैं' इस बातका निरुपण कर ही आये हैं, इसलिये इस सूत्रके कथनकी कोई आवश्यकता नहीं हैं। तथा सम्यग्दर्शनमार्गणाका निरुपण करते समय गुणस्थानोंके निरुपणका अवसर नहीं हैं, इसलिये भी इस सूत्रकेकथनकी आवश्यकता नहीं है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जो शिष्य पूर्वोक्त अर्थको भूल गया है उसके लिये, उस अर्थका पुन: स्मरण कराके उन उन गतियोंमे सम्यग्दर्शनके भेदोंके प्रतिपादन करनेमें यह सूत्र समर्थ है, इसलिये इस सूत्रका अवतार हुआ है। शेष कथन सुगम है।।

अब सातों पृथिवियोंमें सम्यग्दर्शनके निरुपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं --

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें प्रारम्भके चार गुणस्थान होते हैं ।।१५२।।

शंका -- सामान्यके समान विशेष कैसे हो सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, विशेषको छोडकर सामान्य नहीं पाया जाता है, इसलिये सामान्य कथनसे विशेषका भी बोध हो जाता है। इससे सामान्य और विशेषमें सर्वथा अभेद भी नहीं है, क्योंकि, दोनोंमें सर्वथा अभेद मान लेने पर दोनोंका अभाव हो जायगा। इसी प्रकार इन दोनोंमें सर्वथा उभयपक्ष अर्थात् सर्वथा भेद और सर्वथा अभेद भी नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर दोनों पक्षमें दिये गये दोष प्राप्त हो जायेगे। सामान्य और विशेष सर्वथा अनुभयरुप भी नहीं हैं, क्योंकि, ऐसा मान लेनेपर वस्तुको नि:स्वभावताका प्रसंग आ जायगा। तथा सामान्य और विशेषका अभाव भी नहीं है, क्योंकि, जात्यन्तर अवस्थाको प्राप्त होने रुपसे उन दोनोंकी उपलब्धि होती है। इसलिये पूर्वमें जो कथन किया है वह ठीक है, यह बात निश्चित हो जाती है।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह--

णेरइया असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी चेदि ।।१५३।।

सुगममेतत्।

एवं पढमाए पुढवीए णेरइआ ।।१५४।।

एतदपि सुबोध्यम्।

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे खइयसम्माइट्ठि णत्थि, अवसेसा अत्थि ।।१५५।।

सप्तप्रकृतीषु क्षीणासु किमिति तत्र नोत्पद्यन्त इति चेत्स्वाभाव्यात्। तत्रस्था: सन्त: किमिति सप्तप्रकृतीर्न क्षपयन्तीति चेन्न, तत्र जिनानामभावात्।

अब सम्यग्दर्शनका मार्गणाओंमें प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहत हैं --

नारकी जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ।।१५३।।

इस सूत्रका अर्थ सुगम है।

अब प्रथम पृथिवीमें सम्यग्दर्शन बतलानेकेलिये सूत्र कहते हैं --

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव होते हैं ।।१५४।।

इस सूत्रका अर्थ भी सुबोध है।

अब शेष पृथिवियोंमें सम्यग्दर्शनकेनिरुपण करनेकेलिये सूत्र कहते हैं --

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवीतक नारकी जीव असयंतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं। शेषकेदो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ।।१५५।।

शंका -- सम्यक्त्वकी प्रतिबन्धक सात प्रकृतियोंकेक्षय हो जानेपर क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव व्दितीयादि पृथिवियोंमें क्यों उत्पन्न नहीं होतें है?

समाधान -- ऐसा स्वभाव ही है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव व्दितीयादि पृथिवियोंमें नहीं उत्पन्न होते है।

शंका -- व्दितीयादि पृथिवियोंमें रहनेवाले नारकी सम्यक्त्वकी प्रतिबन्धक सात प्रकृतियोंका क्षय क्यों नहीं करते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, वहांपर जिनेन्द्रदेवका अभाव है।

तिर्यगादेशप्रतिपादनार्थमाह --

तिरिक्खा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्मइट्ठि सम्मामिच्छाइट्ठि असंजदसम्माइट्ठि संजदा-संजदा त्ति ।।१५६।।

संन्यस्तशरीरत्वात्त्यक्ताहाराणां तिरश्चां किमिति संयमो न भवेदिति चेन्न, अन्तरङ्गाया: सकलनिवृत्तेरभावात् । किमिति तदभावश्चेज्जातिविशेषात्।

एवं जाव सव्व-दीव-समुद्देसु ।।१५७।।

स्वयम्प्रभादारान्मानुषोत्तरात्परतो भोगभूमिसमानत्वान्न तत्र देशव्रतिनः सन्ति तत एतत्सूत्रं न घटत इति न, वैरसम्बन्धेन देवैदनिवैर्वोत्क्षिप्य क्षिप्तानां देशव्रतीनां सर्वत्र १ (क्षिप्तानां सर्वत्र ।) सत्त्वाविरोधात्।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह --

तिरिक्खा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठि वेदग-सम्माइट्ठि उवसमसम्माइट्ठि ।।१५६।।

अब तिर्यंच गतिमें विशेष प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं ---

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत होते हैं।।१५६।।

शंका -- शरीरसे संन्यास ग्रहण कर लेनेके कारण जिन्होंने आहारका त्याग कर दिया है ऐसे तिर्यंचोंके संयम क्यों नहीं होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, उनकेअन्तरंग सकल-निवृत्तिका अभाव है।

शंका -- उनकेअन्तरंग सकल-निवृत्तिका अभाव क्यों है?

समाधान -- जिस जातिमें वे उत्पन्न हुए हैं उसमें संयम नहीं होता यह नियम है, इसलिये उनकेसंयम नहीं पाया जाता है।

इसी प्रकार संपूर्ण व्दीप-समुद्रवर्ती तिर्यंचोंमें समझना चाहिये ।।१५७।।

शंका -- स्वयंभूरमण व्दीपवर्ती स्वयंप्रभ पर्वतकेइस ओर और मानुषोत्तर पर्वतकेउस ओर (असंख्यात व्दीप-समुद्रोंमें) भोगभूमिकेसमान रचना होनेसे वहांपर देशव्रती नहीं पाये जाते हैं, इसलिये यह सूत्र घटित नहीं होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, वैरकेसंबन्धसे देवों अथवा दानवोंकेव्दारा उठाकर डाले गये देशव्रती तिर्यंचोंका सब जगह सद्भाव होनेमें कोई विरोध नहीं आता है, इसलिये वहांपर तिर्यचोंकेपांचो गुणस्थान बन जाते हैं।

अब तिर्यचोंमें सम्यग्दर्शनकेभेदोंका प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं --

तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशम-सम्यग्दृष्टि होते हैं ।।१५८।।

सुगमम्।

तिरिक्खा संजदासंजद-ट्ठाणे खइयसम्माइट्ठि णत्थि अवसेसा अत्थि ।।१५९।।

तिर्यक्षु क्षायिकसम्यग्दृष्टय: संयतासंयता: किमिति न सन्तीति चेन्न, क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां भोगभूमिमन्तरेणोत्पत्तेरभावात्। न च भोगभूमावुत्पन्नानामणुव्रतोपादानं सम्भवति तत्र तद्विरोधात्। सुगममन्यत्।

एवं पंचिंदिय -तिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्ता ।।१६०।।

एतदपि सुबोध्यम्।

पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणीसु असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-ट्ठाणे खइयसम्माइट्ठि णत्थि, अवसेसा अत्थि ।।१६१।।

तत्र क्षायिकसम्यग्दृष्टिनामुत्पत्तेरभावात्तत्र दर्शनमोहनीयस्य क्षपणाभावाच्च।

मनुष्यादेशप्रतिपादनार्थमाह --

यह सूत्र सुगम है।

तिर्यंच संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं। शेष दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ।।१५९।।

शंका -- तिर्यंचोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संयतासंयत क्यों नहीं होते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, तिर्यंचोंमें यदि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं तो वे भोगभूमिमें ही उत्पन्न होते हैं, दूसरी जगह नहीं। परंतु भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीवोंके अणुव्रतकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि, वहांपर अणुव्रतके होनेंमें विरोध आता है। शेष कथन सुगम है।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-पर्याप्त होते हैं ।।१६०।।

इस सूत्रका अर्थ भी सुबोध है।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं । शेष दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ।।१६१।।

क्योंकि, उनमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न नहीं होते हैं और जो वहां उत्पन्न होते हैं उनके दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं होता है, अत: उनमें क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं पाया जाता है।

मणुसा १ (मु. मणुस्सा।) अत्थि मिच्छाइट्ठि सासणसम्माइट्ठि सम्मामिच्छाइट्ठि असंजदसम्माइट्ठि संजदासंजदा संजदा त्ति ।।१६२।।

सुगममेतत्।

एवमड्ढाइज्ज-दीव-समुद्देसु ।।१६३।।

वैरसम्बन्धेन क्षिप्तानां संयतानां संयतासंयतानां च सर्वव्दीपसमुद्रेषु संभवो भवत्विति चेन्न मानुषोत्तरात्परतो देव २ (मु. देवस्य।) प्रयोगतोऽपि मानुषाणां ३ (मु. मनुष्याणां।) गमनाभावात्। न हि स्वतोऽसमर्थमन्यत: समर्थ ४ (मु. समर्थोऽन्यत: समर्थो ।) भवति, अतिप्रसङ्गात् । अथ स्यादर्धतृतीयशब्देन किमु व्दीपो विशेष्यते ५ (मु. विशिष्यते.) उत समुद्र उत व्दावपीति ? नान्त्योपान्त्यविकल्पौ मानुषोत्तरात्परतोऽपि मनुष्याणामस्तित्वप्रसङ्गात् । अस्तु चेन्न, व्दीपत्रये, मनुष्याणां सत्त्वप्रसङ्गात् । नैतदपि ६ (न तदपि।), सूत्रविरोधात् । नादिविकल्पोऽपि, समुद्राणां संख्यानियमाभावत: सर्वसमुद्रेषु तत्सत्त्वप्रसङ्गादिति।

अब मनुष्योंमें विशेष प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं --

मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत होते हैं ।।१६२।।

इस सूत्रका अर्थ सुगम है इ

इसी प्रकार ढाई व्दीप और दो समुद्रोंमें जानना चाहिये ।।१६३।।

शंका -- वैरके संबन्धसे डाले गये संयत और संयतासंयत आदि मनुष्योंका संपूर्ण व्दीप और समुद्रोंमे सद्भाव रहा आवे, ऐसा मान लेनेमें क्या हानि है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ देवोंकी प्रेरणासे भी मनुष्योंका गमन नहीं हो सकता है। ऐसा न्याय भी है कि जो स्वत: असमर्थ होता है वह दूसरोंके संबन्धसे भी

समर्थ नहीं हो सकता है। यदि ऐसा न होवे तो अतिप्रसंग दोष आ जायगा। अत: मानुषोत्तरके उस ओर मनुष्य नहीं पाये जाते हैं।

शंका -- अर्धतृतीय शब्द व्दीपका विशेषण है या समुद्रका अथवा दोनोंका? इनमेंसे अन्तके दो विकल्प तो बराबर नहीं है, क्योंकि, वैसा मान लेने पर मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ भी मनुष्योंके अस्तित्वका प्रसंग आ जायगा । यदि यह कहा जावे कि अच्छी बात है, मानुषोत्तरके परे भी मनुष्य पाये जावें, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, इस प्रकार तो तीन व्दीपोंमें मनुष्योंके सद्भावका प्रसंग आता है। और वैसा है नहीं, क्योंकि, सूत्रसे विरोध --

----

अत्र प्रतिविधीयते। नान्त्योपान्त्यविकल्पोक्तदोषा: समाढौकन्ते, तयोरनभ्युपगमात्। न प्रथमविकल्पोक्तदोषोऽपि, व्दीपेष्वर्धतृतीयसंख्येषु मनुष्याणामस्तित्वनियमे सति शेषव्दीपेषु मनुष्याभावसिध्दिवन्मानुषोत्तरत्वं प्रत्यविशेषत: शेषसमुद्रेषु तदभावसिध्दे:। नाशेषसमुद्राणां मानुषोत्तरत्वमसिध्दमारात्तनव्दीपभागसप्यन्यथा मानुषोत्तरत्वानुपपत्ते:। तत: सामर्थ्याद् व्दयो: समुद्रयो: सन्तीत्यनुक्तमप्यवगम्यते।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह --

मणुसा असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-संजद-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी१ (मु. अत्थि सम्माइट्ठी।) वेदयसम्माइट्ठि उवसमसम्माइट्ठी ।।१६४।।

सुगमत्वान्नात्र वक्तव्यमस्ति।

एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ।।१६५।।

एतदपि सुगमम्।

आता है। इसी प्रकार पहला विकल्प भी नहीं बन सकता है, क्योंकि, इस प्रकार व्दीपोंकी संख्याका नियम होने पर भी समुद्रोंकी संख्याका कोई नियम नहीं बनता है, इसलिये समस्त समुद्रोंमें मनुष्योंकें सद्भावका प्रसंग प्राप्त होता है?

समाधान -- दूसरे और तीसरे विकल्पमें दिये गये दोष तो प्राप्त ही नहीं होते हैं, क्योंकि, परमागममें वैसा माना ही नहीं गया है। इसी प्रकार प्रथम विकल्पमें दिया गया दोष भी प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, ढाई व्दीपमें मनुष्योंके अस्तित्वका नियम हो जानेपर शेषके व्दीपोंमे जिस प्रकार

मनुष्योंके अभावकी सिध्दि हो जाती है, उसी प्रकार शेष समुद्रोंमें भी मनुष्योंका अभाव सिध्द हो जाता है, क्योंकि, ढाई व्दीपोंको छोडकर शेष व्दीपोंकी तरह दो समुद्रोंके अतिरिक्त शेष समुद्र भी मानुषोत्तरसे परे हैं, अत: शेष व्दीपोंकी तरह शेष समुद्रोंके भी मानुषोत्तरसे परे होनेमें कोई विशेषता नहीं है। इस प्रकार शेष व्दीपोंके लिये जो नियम लागू है वही शेष समुद्रोंके लिये भी हो जाता है। इसलिये शेष समुद्रोंमे मनुष्योंका अभाव है यह बात निश्चित हो जाती है। शेषके संपूर्ण समुद्रोंका मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ होना असिध्द भी नहीं है, अन्यथा समीपवर्ती व्दीपभागके भी मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ होना सिध्द नहीं होगा। इसलिये सामर्थ्यसे दो समुद्रोंमें मनुष्य पाये जाते हैं, यह बात विना कहे ही जानी जाती है।

अब मनुष्योंमें सम्यग्दर्शनके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं --

मनुष्य असंतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ।।१६४।।

इस सूत्रका अर्थ सुगम होनेसे यहां पर विशेष कहने योग्य नहीं है।

इस प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें भी जानना चाहिये ।।१६५।।

इस सूत्रका अर्थ भी सुगम है।

देवादेशप्रतिपादनार्थमाह--

देवा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ।।१६६।।

एवं जाव उवरिम-गेवेज्ज-विमाण-वासिय-देवा त्ति ।।१६७।।

देवा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदय-सम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठि त्ति ।।१६८।।

सुगमत्वात्सूत्रत्रितये न किञ्चिव्दक्तव्यमस्ति।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसिय देवा देवीओ च सोधम्मीसाण-कप्पवासिय-देवीओ च असंजदासम्माइट्ठि-ट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि अवसेसा अत्थि अवसेसियाओ अत्थि ।।१६९।।

किमिति क्षायिकसम्यग्दृष्टयस्तत्र न सन्तीति चेन्न, देवेषु दर्शनमोहक्षपणाभावात्क्षपितदर्शनमोहकर्मणामपि प्राणिनां भवनवास्यादिष्वधमदेवेषु सर्वदेवीषु

चोत्पत्तरेभावाच्च। शेषसम्यक्त्वव्दयस्य तत्र कथं सम्भव इति चेन्न, तत्रोत्पन्नजीवानां पश्चात्तत्पर्यायपरिणतेः। सत्त्वात्।

अब देवोंमें विशेष प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं --

देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि होते हैं ।।१६६।।

इसी प्रकार उपरिम उपरिम ग्रैवेयक तकके देव जानना चाहिये ।।१६७।।

देव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशम सम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१६८॥

पूर्वोक्त तीनों सूत्रोंका अर्थ सुगम होनेसे इनकेविषयमें अधिक कुछ भी नहीं कहना है।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव तथा उनकी देवियां और सौधर्म तथा ईशानकल्पवासी देवियां असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं है। शेषके दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं और होती हैं ।।१६९।।

शंका -- क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उक्त देवों और देवियोंमें क्यों नहीं होते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, एक तो वहांपर दर्शनमोहनीयका क्षपण नहीं होता है। दूसरे जिन जीवोंने पूर्व पर्यायमें दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है उनकी भवनवासी आदि अधम देवोंमें और सभी देवियोंमें उत्पत्ति नहीं होती है।

शंका -- शेषकेदो सम्यग्दर्शनोंका उनमें सद्भाव कैसे संभव है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, वहांपर उत्पन्न हुए जीवोंकेअनन्तर सम्यग्दर्शनरुप पर्याय हो जाती है, इसलिये शेषकेदो सम्यग्दर्शनोंका वहांपर सद्भाव पाया जाता है।

सोधम्मीसाण-प्पहुडि-जाव उवरिम-उवरिम-गेवज्ज-विमाण-वासिय-देवा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदग-सम्माइट्ठी उवसमम्माइट्ठी ।।१७०।।

त्रिविधेन सम्यक्त्वेन सह तत्रोत्पत्तेर्दर्शनात्। तत्रोत्पद्य व्दिविधसम्यग्दर्शनोपादानात्तत्र तेषां सत्त्वं सुघटमिति ।

शेषदेवानां सम्यग्दर्शनभेदप्रतिपादनार्थमाह --

अणुदिस-अणुत्तर-विजय-वइजयंत-जयंतावराजिद-सवट्ठ-सिध्दिविमाण-वासिय-देवा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे-अत्थि खइय-सम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ।।१७१।।

कथंम तत्रोपशमसम्यक्त्वस्य सत्त्वमिति चेत्कथं च तत्र तस्यासत्त्वम्? तत्रोत्पन्नेभ्य: क्षायिकक्षायोपशमिकसम्यग्दर्शनेभ्यस्तदनुत्पत्ते:। नापि मिथ्यादृष्टय उपात्तौपशमिकसम्यग्दर्शना: सन्तस्तत्रोत्पद्यन्ते, तेषां तेन सह मरणाभावात्। न,

----

सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर उपरिम उपरिम ग्रैवेयक तकके देव असंतयसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ।।१७०।।

उक्त देवोंमें तीनों ही प्रकारके सम्यग्दर्शनके साथ जीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है अथवा, वहांपर उत्पन्न होनेके पश्चात् वेदक और औपशमिक इन दो सम्यग्दर्शनोंका ग्रहण होता है, इसलिये उक्त देवोंमें तीनों सम्यग्दर्शनोंका सद्भाव बन जाता है।

अब शेष देवोंमें सम्यग्दर्शनकेभेद बतलानेकेलिये सूत्र कहते हैं --

नव अनुदिशोंमें और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिध्दि इन पांच अनुत्तरोंमें रहनेवाले देव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ।।१७१।।

शंका -- यहांपर उपशम सम्यग्दर्शनका सद्भाव कैसे पाया जाता है?

प्रतिशंका -- यहांपर उसका सद्भाव कैसे नहीं पाया जा सकता है?

शंका -- वहांपर जो उत्पन्न होते हैं उनके क्षायिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन पाया जाता है, इसलिये उनके उपशम सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। और मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यग्दर्शनको ग्रहण करके वहांपर उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि, ऐसे उपशमसम्यग्दृष्टियोंका उपशमसम्यक्त्वके साथ मरण नहीं होता है।

समाधान -- नहीं, क्योंकि, उपशम श्रेणीपर चढनेवाले और चढकर उतरनेवाले जीवोंकी अनुदिश और अनुत्तरोंमें उत्पत्ति होती है, इसलिये वहांपर उपशम सम्यक्त्वके सद्भाव रहनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

----

[१] (मु. श्रेण्यारुढा।) उपशमश्रेण्यामारुढानामारुह्यावतीर्णानां च तत्रोत्पत्तितस्तत्र तत्सत्त्वाविरोधात्। उपशमश्रेण्यारुढा उपशमसम्यग्दृष्टयो न म्रियन्ते औपशमिकसम्यग्दर्शनोपलक्षितत्वाच्छेषौपशमिकसम्यग्दृष्टय इवेति चेन्न, पश्चात्कृतमिथ्यात्वसम्यक्त्वाभ्यामनुपशमितोपशमितचारित्रमोहाभ्यां च तयोर्वैधर्म्यात् ।

सम्यग्दर्शनमुखेन जीवपदार्थमभिधाय समनस्कामनस्कभेदेन जीवपदार्थप्रतिप्रतिपादनार्थमाह--

सण्णियाणुवादेण अत्थि सण्णी असण्णी ।।१७२।।

सुगममेतत्सूत्रम् २ (अ. प्रतौ 'उक्तंच' इत्यत आरम्भ गाथेयं नास्ति। मु. प्रतावपि।) उक्तं च --

मीमंसदि जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च ।
सिक्खदि णामेणेदि य सो समणो असमणो य विवरीदो ।।२२१।।

संज्ञिनां गुणस्थानाध्वानप्रतिपादनार्थमाह --

सण्णी मिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्था त्ति [३] (संज्ञानुवादेन संज्ञिषु व्दादश गुणस्थानानि क्षीणकषायान्तानि। स. सि. १.८.) ।।१७३।।

शंका -- उपशम श्रेणीपर आरुढ हुए उपशम सम्यग्दृष्टि जीव नहीं मरते हैं, क्योंकि, वे उपशम सम्यग्दर्शनसे युक्त होते हैं। जिस प्रकार अन्य औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंका मरण नहीं होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, पश्चात्कृत मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी अपेक्षा तथा अनुपशमित और उपशमित चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा साधारण उपशम सम्यग्दृष्टियों और उपशम श्रेणीपर चढे हुए सम्यग्दृष्टियोंमें वैधर्म्य है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शनके व्दारा जीव पदार्थका कथन करके अब समनस्क और अमनस्क इन दो भेदरुप संज्ञीमार्गणाके व्दारा जीव पदार्थके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं --

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी और असंज्ञी जीव होते हैं ।।१७२।।

इस सूत्रका अर्थ सुगम है।

जो कार्य करनेसे पूर्व कार्य और अकार्यका, तथा तत्त्व और अतत्त्वका विचार करता है, दूसरोंके व्दारा दी गई शिक्षाओंको सीखता है और नाम लेनेपर आ जाता है वह समनस्क है और जो इससे विपरीत है वह अमनस्क है ।।२२१।।

अब संज्ञी जीवोंके गुणस्थानोंमें प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं --

संज्ञी जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थानतक होते हैं ।।१७३।।

समनस्कत्वात्सयोगकेवलिनोऽपि १ (मु. सयोगिकेवलिनोऽपि।) संज्ञिन इति चेन्न, तेषां क्षीणावरणानां मनोऽवष्टम्भबलेन बाह्यार्थग्रहणाभावतस्तदसत्त्वात्। तर्हि भवन्तु केवलिनोऽसंज्ञिन इति चेन्न, साक्षात्कृताशेषपदार्थानामसंज्ञित्वविरोधात् । असंज्ञिन: केवलिनो मनोऽनपेक्ष्य बाह्यार्थग्रहणाव्दिकलेन्द्रियवदिति चेद्भवत्येवं यदि मनोऽनपेक्ष्य ज्ञानोत्पत्तिमात्रमाश्रित्यासंज्ञित्वमुच्येत । किं पुनरसंज्ञित्वस्य निबन्धनमिति२ (मु. माश्रित्यासंज्ञित्वस्य निबन्धनमिति।) चेत्? मनसोऽभावाद् बुध्दयतिशयाभाव: ततो नानन्तरोक्तदोष इति सुगममन्यत् ३ (मु. सुगममेतत्।)।

असण्णी एइंदिय-प्पहुडि जाव असण्णि-पंचिंदिया त्ति ४ (असंज्ञिषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्। स. सि. १.८.) ।।१७४।।

एतदपि सूत्रं सुगमम् ५ (मु. सुगमं सूत्रम्।)।

आहारमुखेन जीवप्रतिपादनार्थमाह --

आहाराणुवादेण अत्थि आहारा अणाहारा ।।१७५।।

शंका -- मनसहित होनेकेकारण सयोगकेवली भी संज्ञी होते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, आवरण कर्मसे रहित उनके मनके अवलम्बनसे बाह्य अर्थका ग्रहण नहीं पाया जाता है, इसलिये उन्हें संज्ञी नहीं कह सकते।

शंका -- तो केवली असंज्ञी रहे आवें?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जिन्होंने समस्त पदार्थोंको साक्षात् कर लिया है उनके असंज्ञी होनेमें विरोध आता है ।

शंका -- केवली असंज्ञी होते हैं, क्योंकि, वे मनकी अपेक्षाके विना ही विकलेन्द्रिय जीवोंकी तरह बाह्य पदार्थोको ग्रहण करते हैं?

समाधान -- यदि मनकी अपेक्षा न करके ज्ञानकी उत्पत्तिमात्रका आश्रय करके असंज्ञीपना कहा जाता तो ऐसा होता। परंतु ऐसा नहीं है।

शंका -- तो असंज्ञित्वका क्या कारण है?

समाधान -- मनका अभाव होनेसे बुध्दिके अतिशयका अभाव असंज्ञित्वका कारण है। इसलिये केवली को पूर्वमें दिया गया दोष सम्भव नहीं है । अन्य कथन सुगम है।

असंज्ञी जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रियपर्यन्त होते हैं ।।१७४।।

यह सूत्र भी सुगम है।

अब आहारमार्गणाके व्दारा जीवोंके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं --

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक और अनाहारक जीव होते हैं ।।१७५।।

एतदपि सुगमम्।

[१] (मु. आहार।) आहारिगुणप्रतिपादनार्थमाह ---

आहारा एइंदिय-प्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति २ (आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगकेवल्यन्तानि। स. सि. १. ८.) [६]१७६[६]

अत्र कवललेपोष्ममनःकर्माहारान् परित्यज्य नोकर्माहारो ग्राह्यः, अन्यथा-हारकालविरहाभ्यां सह विरोधात्।

अणाहारा चदुसु ट्ठाणेसु विग्गहगइ-समावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घाद-गदाणं अजोगिकेवली सिध्दा चेदि ।।१७७।।

एते शरीरप्रायोग्यपुद्गलोपादानरहितत्वादनाहारिण उच्यन्ते।

इति संत-सुत्त-विवरणं समत्तं।

यह सूत्र भी सुगम है।

अब आहारमार्गणामें गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं ---

आहारक जीव एकेन्द्रियसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ।।१७६।।

यहांपर आहार शब्दसे कवलाहार, लेपाहार, ऊष्माहार, मानसिकाहार और कर्माहारको छोडकर नोकर्माहारका ही ग्रहण करना चाहिये। अन्यथा आहारकाल और विरहके साथ विरोध आता है।

विग्रहगतिको प्राप्त जीवोंके मिथ्यात्व, सासादन और अविरतसम्यग्दृष्टि तथा समुध्दातगत केवलियोंके सयोगिकेवली, इन चार गुणस्थानोंमें रहनेवाले जीव और अयोगिकेवली तथा सिध्द अनाहारक होते हैं ।।१७७।।

ये जीव शरीरके योग्य पुद्‌गलोंका ग्रहण नहीं करते हैं, इसलिये अनाहारक होते हैं।

इस प्रकार सत्प्ररुपणा-सूत्र-विवरण समाप्त हुआ।